३

१८ जुलाई की शाम

[जुलाई १९३७]

पात्र-परिचय

१—प्रमोद—राष्ट्रवाणी समाचार-पत्र का संवाददाता और उषा का पति। आयु २५ वर्ष

२—उषा—फ़ैशन की देवी। आयु २० वर्ष

३—अशोक—प्रमोद और उषा का मित्र, मुंसिफ़। आयु २३ वर्ष

४—राजेश्वरी—प्रमोद की आराधिका और उषा की सखी। आयु २१ वर्ष

५—पोस्टमैन।

इस नाटक का सर्व प्रथम अभिनय कायस्थ पाठशाला यूनीवर्सिटी कॉलेज के विद्यार्थियों द्वारा १९ दिसम्बर सन १९३८ में डा० ताराचन्द एम० ए०, डी० फ़िल् और लेखक के निर्देशन में हुआ। भूमिका इस प्रकार थी :

प्रमोद	...	श्री भुवनेश्वर प्रसाद
उषा	...	श्री हरिश्चन्द्र
अशोक	...	श्री मोहन लाल
राजे	...	श्री व्रजभूषण
पोस्टमैन	...	श्री अवध विहारी लाल

प्रमोद का मकान। समय ४ बजे शाम। कमरे में एक ओर महात्मा गांधी का चित्र, दूसरी ओर प्रमोद का फोटो। खूँटी पर कुछ कपड़े टँगे हुए हैं। समीप ही कैलेंडर, जिसमें १८ जुलाई का पृष्ठ। दरवाज़े के ऊपर क्लॉक।

प्रमोद इलाहाबाद यूनिवर्सिटी से एम० ए० पास कर चुका है, पर उस पर फ़ैशन का प्रभाव बिलकुल नहीं है। वह साफ़ धोती और आधी बाँह की खद्दर की क़मीज़ पहने हुए है। पैर में स्लीपर्स। बाल बिखरे हुए।

वह 'राष्ट्रवाणी' के सम्पादन-विभाग में काम करता है, संवाददाता है। समाचार संग्रह करना उसका प्रधान कार्य है। इस समय भी वह टेबुल पर काम कर रहा है। रविवार का दिन है, पर उसके कार्य-क्रम में रविवार नहीं है। वह एक अंग्रेज़ी समाचार-पत्र को सामने रख कर उससे समाचार संग्रह कर रहा है। उसकी आयु पच्चीस वर्ष की है, पर कार्याधिक्य से वह अधिक आयु का जान पड़ता है। मुख पर जैसे ज़िम्मेदारी की गंभीरता है।

उसके समीप ही उसकी स्त्री उषा, बी० ए० लिपस्टिक लगा रही है। वह लगभग २० वर्ष की होगी। सुन्दर मुख और निखरा हुआ रंग। फैशन ने उस पर पूर्ण प्रभाव छोड़ रखा है। सलोने मुख पर क्रीम और उस पर पाउडर की चाँदनी। क्रेप की साड़ी और उस पर वाएल का जम्पर। कानों में नये डिज़ाइन के इयरिंग। कन्धे के समीप डायमंड ब्रच। गले में सोने की चेन और स्वस्तिका। हाथ में सोने की गोलघड़ी और एक पतली रेशमी चूड़ी।

वह कुछ अस्थिर है। प्रमोद की नज़र बचाकर कमरे में लगी हुई क्लॉक देख लेती है, जिसमें चार बजने में २ मिनट हैं। प्रमोद अपने कार्य में लीन है। वह लिखने के बाद अपने समाचार-संग्रह का अवतरण पढ़ता है:—

भयंकर दुर्घटना!

आहत स्त्री-पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार !!

बिहटा—१८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सब से भयानक वह है जो पटना के पास बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख़ की रात्रि को घटी। पजाब-हावड़ा एक्सप्रेस, जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई.....[रुक कर अंग्रेज़ी अख़बार की ओर देखकर] सम थ्री हन्ड्रेड पैसिंजर्स। हाँ, [फिर अपने अवतरण को पढ़ता हुआ] तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। एंजिन रास्ते से टेढ़ा होकर नीचे गिर पड़ा जैसे कोई दैत्य ठोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-

चूर हो गए। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अङ्ग-विहीन हो गये। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गये। उसकी नव-विवाहिता पत्नी · · [चार बजते हैं।]

उ०—[ऊबकर]—डैश इट् आल ! चार बज चुके, तुम्हें अपने काम से फ़ुर्सत ही नहीं। [अस्थिर होकर घड़ी की ओर देखती है, फिर लिपस्टिक लगाने लगती है।]

प्र०—[पूर्ववत् ध्यान-मग्न]—उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी है, किन्तु वह साधारण है, पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह शारीरिक चोट से कितनी भयानक है ! उसका—

उ०—[हाथ की घड़ी की ओर देखकर] कब तक तुम्हारा काम समाप्त होगा ? कहीं बाहर निकलना भी चाहूँ तो मर के भी नहीं निकल सकती। चार बज चुके [खिन्न मुद्रा।]

प्र०—[उषा की ओर देखकर] तो क्या हुआ उषा ? जब काम सिर पर ही है तो चार बजें चाहे चौदह। उसे तो करना ही होगा।

उ०—[व्यंग्य से]—अच्छा काम करना होगा ! मैं तो मरी जा रही हूँ। चौबीसों घटे घर में बन्द रहूँ। यह मुझसे नहीं होगा। कहाँ कालेज डेज़ में पिकनिक, मीटिंग्ज़, लेक्चर्स, सिनेमा और कहाँ यह कैदखाना ! ऐसे तो मैं मर जाऊँगी।

प्र०—तो तुम्हें बाहर जाने से रोकता कौन है उषा ? जाओ जहाँ जी चाहे। पार्क में घूमो, सिनेमा जाओ, यहाँ जाओ-वहाँ जाओ। मैं कब तुम्हें रोकता हूँ ? तुम्हारे आहार-विहार के जीवन में मैं रुकावट

नहीं डालना चाहता उषा। पर सोचो, मैं कैसे सब समय तुम्हारा साथ दे सकता हूँ? 'राष्ट्रवाणी' न्यूज़ पेपर के आफ़िस में हूँ। रोज़ समाचार भेजना पड़ता है। अनुवाद करना पड़ता है। लेख लिखना पड़ता है अगर यह सब न करूँ तो काम कैसे चलेगा? यह संवाद आज ही—अभी ही—शाम को भेजना है, नहीं तो कल अख़बार कैसे निकलेगा? नये समाचार तो रखना ही होगा। बिहटा की ट्रेन दुर्घटना·····।

उ०—[झुँझला कर]—ट्रेन दुर्घटना, भूकम्प, ब्लेग! क्या करूँ बैठकर रोऊँ? संसार में तो यह रोज़ का काम है। इसके लिए कोई नहाना, खाना, सोना छोड़ दे? तुम्हारे लिए भी यह रोज़ की बात है। सब को संडे की छुट्टी है, आप आज भी ख़च्चर की तरह जुते हुए हैं। और अगर तनख़्वाह भी अच्छी होती तो ग़नीमत थी···गिने हुए चालीस·····शः [घृणा प्रदर्शन]

प्र०—[शान्ति से] उषा, तुम चाहे जो कुछ कह लो, पर अगर एम० ए० और एम० एस-सी० पास करने पर भी मैं ऊँची जगह न पा सका तो इसमें मेरा कितना दोष है?

उ०—तो फिर किसका दोष है? मेरा?

प्रमोद—तुम्हारा क्यों? अपने ग़रीब पिता के रक्त से बने हुए रुपयों की धारा यूनीवर्सिटी के आफिस में बहाकर मैंने डिगरियाँ मोल लीं। एम० ए० या एम० एस०-सी० के दो तीन अक्षर ही पिता जी की सारी कमाई को पी गए। पर इस सब के बाद मुझे मिला क्या! कितनी जगह मैं घूमा। लखनऊ, रोरकी, जमशेदपुर—कितनी जगह

एप्लीकेशंस भेजीं, कितने साहबों से मिला पर एक ही उत्तर—जगह नहीं है।

उ०—सब के लिए जगह है केवल आपके लिए ही नहीं!

प्र०—[पूर्ववत् स्वर में] सुना था, अनएम्प्लायमेंट-कमिटी भी बैठी थी। सर सप्रू ने कितनों को क्रास-एग्ज़ामिन कर रिकमेंडेशंस भेजीं, पर उसका परिणाम क्या हुआ? कुछ नहीं। सब झूठ—ओफ, कहाँ कहाँ मैं नहीं गया! किस किस से मैंने प्रार्थना नहीं की! मैंने सब कुछ किया केवल आत्म हत्या नहीं की। यही मेरा दोष है!

उ०—आत्म-हत्या क्यों करते? पर यह चालीस की नौकरी तो गले से नहीं उतरती। तुम्हारे एम० ए० पास होने पर ही तो मेरे पिता ने तुम्हें पसन्द किया था। डिप्टी कलेक्टर होकर भी भूल कर बैठे। न जाने कितनों के लिए जजमेंट लिखते हैं, कितनों को क़ैद की सज़ा देते हैं। लोगों को सज़ा देते देते मुझे भी यह क़ैद की सज़ा दे बैठे!

प्र०—तुम स्वतंत्र हो उषा। अपने पिता को क्यों दोष देती हो?

उ०—हाँ, उन्हें क्या मालूम था कि पोस्ट-ग्रेजुएट महाशय डिप्टी कलेक्टर न होकर चालीस रुपये के सवाददाता होंगे! [घृणा से] सवाददाता—अन्नदाता—कितना फूहड़ शब्द है! डिप्टी कलेक्टर और सवाददाता! कल्पना और सत्य में कितना अन्तर है! जितना चारसौ और चालीस मे। चालीस में मेरा क्या होगा? पचास रुपये तो फ़ादर मथली मुझे जेब-ख़र्च के लिए देते थे। ऊपर से मैं अपने कम्फर्ट्स पर जो ख़र्च करती थी वह अलग। चालीस तो मेरा बैरा

पाता है। सुलेमान। चालीस में आप खाइएगा या मुझे खिलाइएगा ? चा···ली···स [सोचकर] सुनाजी, मैं घर जाऊँगी। पिता के यहाँ रेशम, यहाँ खद्दर के चिथड़े।

प्र०—उषा, इतनी अवहेलना क्यों करती हो ? आख़िर इसमें मेरा क्या दोष ? इतनी मेहनत करता हूँ, तब इतना मिलता है। यदि न करूँ तो इतना भी नसीब न हो। मैं यदि किसी तरह समय बरबाद करता, काम न करता, मेहनत न करता, तो तुम्हारा कहना ठीक था। पर मैं काम करते करते हैरान हूँ और तुम ख़ुश नही हो ? मैं जानता हूँ कि इन चालीस रुपयों में तुम्हारी एक साड़ी भी न आवेगी। तुम्हें तरह-तरह के ब्रूचेज़, जम्पर्स, हेयरपिन्स, इयररिंग्ज़ चाहिए। बी० ए० मे तो तुम न जाने क्या क्या पहनती थीं, जिनके नाम भी मुझे याद नहीं। पर यह सब कहाँ से लाऊँ ? मैं स्वयं लज्जित हूँ, पर बतलाओ मेरे लिए कौन सा रास्ता है ? मैं अपने ऊपर एक पैसा भी ख़र्च नहीं करता। सब तुम्हारा है—सब तुम्हारा है।

उ०—[व्यङ्ग से] "तुम्हें तरह तरह के ब्रूचेज, जम्पर्स, हेयर-पिन्स चाहिये।" तो इसके लिए मैं क्या करूँ ! क्या ये मामूली चीज़ें भी पहनना छोड़ दूँ ! कौन सा ख़र्च कम कर दूँ जिससे आपके चालीस रुपयों में बचत हो जावे ! फासफ़रीन न पिऊँ तो सर में दर्द हो जाता है ! फ़ोनटोना के बिना कमज़ोरी मालूम होती है। यार्डले मुख पर न लगाऊँ तो मालूम हो जैसे बरसों से बीमार हूँ। कहिये तो सिरोलीन रोश् ही खाना बन्द कर दूँ—पर उसके बिना कभी कफ से 'सफर' करती हूँ। या फिर 'क्रासवर्ड' भेजना बन्द कर दूँ ?

प्र०—कुछ मत बन्द करो। मैं मर कर भी जितना कमा सकूँगा, कमाऊँगा। मैं यदि अधिक नहीं कमा सकता तो मेरा दोष ?

उ०—आपका दोष न हो, पर मेरा मन तो यहाँ नहीं लगता। मैं अपने घर जाऊँगी।

प्र०—[स्नेह से]—मेरी उषा, यदि ख़ुशी से घर जा रही हो तो सौ बार जाओ, पर यदि नाराज़ी से जा रही हो तो मैं क्या कहूँ ! दो महीने हुए मेरा तुम्हारा विवाह तो हो ही चुका है। भाग्य की ज़ंजीर ने हमें तुम्हें दो पेड़ों की तरह उलझा दिया है सब समय के लिए। यह स्थिति अब सुलझ नहीं सकती। यदि इसी में तुम्हारी प्रसन्नता है तो .....।

उ०—प्रसन्नता और अप्रसन्नता की बात नहीं है। मेरी माँ की तबीयत भी ठीक नहीं है। उन्हें देखने जाना है।

प्र०—[लाचार होकर] मेरे पास तो छुट्टी नहीं है। कहो तो ले लूँ जितने दिन की तुम कहो।

उ०—आपके कष्ट करने की आवश्यकता नहीं। मुझे किसी का एहसान नहीं चाहिये। मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी। वे भी तो देहरादून के रहने वाले हैं।

प्र०—अशोक के साथ.....?

उ०—हाँ, अशोक के साथ। आप उन्हें जानते होंगे। हम लोगों के साथ बी० ए० में पढते थे। जार्ज-टाउन में रहते थे। उनके पास क्रायसलर कार भी थी।

प्र०--हाँ, मै अशोक को तो अच्छी तरह से जानता हूँ। वे तो अपने साथ ही पढ़ते थे। बिलकुल अप-टु-डेट।

उ०—हाँ, मैं उन्हे अपना भाई ही समझती हूँ। वे आज ही शाम को पटने से आने वाले हैं। [क्लॉक की ओर देखती है।] शायद कल ही देहरादून चले जावें। सुनते हैं, मुंसिफी की जगह मिल गई है। वे अपनी जगह पर जाने से पहले देहरादून जाकर अपने पिता से मिलना चाहते हैं। न हो तो मै भी साथ-साथ चली जाऊँ।

प्र०—क्या वे आज ही शाम को आने वाले हैं ?

उ०—हाँ, आज ही शाम को। क़रीब सवा चार बजे। [हाथ की घड़ी की ओर देखती है।] मुमकिन है आते हो। सवा चार बज चुके हैं।

प्र०—तुम उन्हें अपना भाई समझती हो ?

उ०—[कटुता से] हाँ, बहुत दिनों से। क्या तुम्हें कुछ संदेह है ? देहरादून मे भी वे मेरे घर अक्सर आया करते थे। मैं उनको 'अशोक भाई' कहा करती थी। यूनीवर्सिटी मे भी मै उन्हें...।

प्र०—ख़ैर, यह सब कहने की आवश्यकता नही। यदि तुम ठीक समझती हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। तुम अपनी स्थिति बहुत अच्छी तरह से समझती हो उषा ! फिर यदि माताजी की तबीयत ठीक नहीं है तो मुझे तो तुम्हारे जाने मे कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती।

उ०—[संतोष से]—बस ठीक है। मैं जल्द ही जाने का विचार करूँगी।

प्र०—अच्छा तो, अब मैं अपनी दुर्घटना का संवाद पूरा कर लूँ ?

उ०—[घड़ी देख कर] पर देखिए, मेरे सिर में अक्सर रात को जो दर्द हो जाया करता है उसके लिए डॉक्टर बैनर्जी ने यू० डी० क्रोन की पट्टी रखने के लिए कहा है। अच्छा हो, यदि आप उसे ले आवें। नहीं तो फिर दुकानें बन्द हो जावेंगी। काम तो आप रात में भी कर सकते हैं।

प्र०—यों तो दूकानें ६ बजे रात तक खुली रहती हैं, पर तुम्हारे कहने से मैं अभी ही लेता आऊँगा। फिर निश्चिंत होकर काम करूँगा। [उठ कर खूँटी से कोट पहनता है।]

उ०—और साथ में ज़ुकाम के लिए वैपेक्स भी।

प्र०—[कोट पहनते हुए]—और कुछ .....?

उ०—टाफीज़ और लेमन-ड्राप्स भी।

प्र०—[उषा की ओर देर तक देख कर] बहुत अच्छा।

[प्रस्थान]

[उषा क्लाक की ओर ध्यान से देखती है। फिर मोज़ा बुनती है। पर उसका मन नहीं लगता। एक किताब उठाकर पढना चाहती है। उसे भी छोड देती है। अख़बार उठाती है। पढ़ती है। चौंककर—]

अच्छा ! दस बालिकाओं से भरी नौका डूबी !

जबलपुर—१५ जुलाई—आज शाम को सग्राम-सागर के समीपवर्ती हरे-भरे पहाड़ी स्थान में स्थानीय स्कूल की कुछ छात्रायें पिकनिक के लिये गई थीं। संध्या समय जब वे सग्राम-सागर पर नौका-विहार कर रही थीं उस समय अचानक मधु-मक्खियों का एक झुंड उस नौका पर टूट पड़ा। लड़कियों में हलचल मच गई और इससे नौका उलट

गई। सभी लड़कियाँ जल-मग्न हो गईं। अभी तक केवल दो पानी से बाहर निकाली जा सकी हैं। मल्लाहों द्वारा उनकी खोज हो रही है।

[सोचती है, गहरी साँस लेकर] अगर मैं भी उन्हीं के साथ डूब जाती!

[नैपथ्य में ओठों से सीटी बजा कर कोई अंग्रेज़ी स्वर में गाता है:—इफ यू वेयर दि ओनली गर्ल एंड आइ दि ओनली ब्वाय।

आइ दि ओनली ब्वाय।]

[दरवाज़े पर खट्खट् की आवाज़]

उ०—[भौंहें सिकोड़ कर]—कौन?

स्वर—ए० के० गुप्ता, अशोककुमार!

उ०—[उल्लास से] अहः अशोक! वेलकम!!

[अशोककुमार एम० ए० का प्रवेश। चौबीस वर्ष का सुन्दर नवयुवक। वेशभूषा में सुरुचि और कला। बाल ग्लिसरीन से सँवारे हुए। स्टार्च्ड कालर और फूल की तरह बो। मर्सराइज़्ड सूट। हलका रेशमी रुमाल हृदय की तरह पाकेट में रक्खा हुआ है। पेटेण्ट शू। व्यक्तित्व इतना ताज़ा जैसे वह अभी ही स्नान करके चला आ रहा है। क्लीन शेव। आँखों में रसिकता और ओठों में मुस्कान। हाथ में 'क्रेवन ए' सिगरेट का डिब्बा। आते ही कमरे में लेवेण्डर की ख़ुशबू फैल जाती है। आते ही उषा को देखकर—]

ओः मिसेज़ गुप्ता! उषा! मिस उषा! यू-एस-एच-ए!

उ०—[उल्लास से उठकर]—अशोक! अशोक!! काम्प्रेचु-लेशस!

अ०—[प्रसन्नता से] थैंक्स, उषा ! [हाथ मिलाते हैं ।] अच्छी तो हो ? हाऊ डू यू ?

उ०—हाँ, अच्छी हूँ किसी तरह । तुम तो अच्छे हो ? [बैठते हैं ।]

अ०—बहुत, बहुत अच्छा । उषा ! ओ० के० । अभी पटने से आ रहा हूँ । बिहटा गया था । दि ग्रेस आव् डिसाइटर । ओफ़, अगर एक दिन पहले जाता तो मुमकिन था कि मेरा नाम भी उस लिस्ट में इनक्लुड होता । मैंने आज वहाँ के विकटिम्स को देखा । एक रोज़ पहले जाता तो लोग मुझे देखते ! [सिगरेट जलाता है ।]

उ०—कैसी बातें करते हो अशोक ? ईश्वर न करता तुम पर आँच आती ।

अ०—तुम्हारी 'वेस्ट विशेज़' कहाँ जातीं ? इसी से तो बच सका । वहाँ की तो बहुत पैथेटिक साइट थी !

उ० [दुःखित होकर] आँ, बहुत पैथेटिक साइट थी ? मैंने जब यह न्यूज़ सुना तभी फेट हुई जा रही थी । अभी पाँच मिनट पहले मैं उसी दुर्घटना पर आँसू बहा रही थी । तुम तो उसे देख भी आए ! तो अभी ही आ रहे हो ? तुम्हारी राह बड़ी देर से देख रही थी । [घड़ी की ओर देखती है ।]

अ०—ऐसी बात थी ? थैंक्स । अभी शाम की गाड़ी से आ रहा हूँ । शायद कुछ लेट हो । मैंने तो तुम्हें लिख ही दिया था ।

उ०—हाँ, मैं जानती थी कि तुम आज शाम को आ रहे हो । अच्छा, कुछ जलपान ? चा ? मुझे ही अपने हाथ से तैयार करनी होगी । कोई नौकर तो—

अ०—ओः, तब तो और भी स्वादिष्ट होगी। ओ० के०। पर ठहरो, तकलीफ़ मत करो। गाड़ी से उतरते ही मैं फ़र्स्ट क्लास वेटिंग रूम में चला गया। मुँह धोया। फिर अच्छा नाश्ता करके आ रहा हूँ।

उ०—तब ठीक बात है। फिर मैं आपकी आवभगत भी तो नहीं कर सकती। बहुत बड़े आदमी अशोक की। मैं तो ग़रीब हूँ। और अशोक, तुम तो अब और भी बड़े आदमी बन गये, मुंसिफ साहब!

अ०—[गर्व से] बड़ा कब नहीं था उषा?, कालेज में भी बड़ा था। जार्ज टाउन मे रहता था। मोटर पर रात-दिन सैर। सिनेमा। पैलेस का तो 'पास' ही मेरे पास था। इलाहाबाद जैसे सूखे शहर में भी मैं दो सौ फूँक देता था। जहाँ के लड़के फिलासफी या स्टैटिस्टिक्स की तरह ड्राइ हैं उस इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में भी मैं वसन्त की बहार देखता था। उषा, और बड़ा आदमी किसे कहते हैं? [सिगरेट का धुँआ ओंठ उचका कर छोड़ता है।]

उ०—[उल्लास से]—वास्तव में तुम बड़े आदमी हो अशोक! तब भी थे और अब भी।

अ०—और उषा! तुम कैसी होगई हो? दुबली-पतली, न ठीक हँस सकती हो। और ठीक रो भी सकती हो या नहीं? पगली लड़की! पहले तो नैशटरशम की तरह ख़ुशरंग, उषा की तरह सुसज्जित, ओस की तरह निर्मल थी, और—

उ०—[दुःखी होकर]—अशोक, कुछ मत कहो। अब मेरा जी मत जलाओ। मैं पानी से बाहर की हुई मछली हूँ। [आँखों में पानी]

अ०—[सान्त्वना देते हुए]—अरे तुम्हारी आँखों में पानी ! हुश्! अच्छी अच्छी उषा, मैं आया हूँ और ऐसी बात ? अच्छा प्रमोदजी कहाँ है ?

उ०—बाहर गये हुए हैं।

अ० [प्रसन्नता से]—क्या इलाहाबाद से बाहर ?

उ०—नहीं, शहर ही में।

अ०—अच्छा, कब तक लौटेंगे ?

उ०—एक आध घण्टे से पहले नहीं। चौक में उन्हें कुछ काम है।

अ०—कोई ख़ास ?

उ०—नहीं, यू० डी० क्लोन और वैपेक्स लाने के लिए।

अ०—क्यों, क्या उनकी तबियत ठीक नहीं है ?

उ०—नहीं ठीक है। मैंने ही भेजा है, मुझे ज़रूरत. .

अ०—क्यों तुम्हें क्या हुआ ?

उ०—कुछ नहीं। [क्लॉक देखकर] तुमसे एकान्त मे मिलना चाहती थी !

अ०—[प्रशंसा से हाथ में हाथ लेते हुए] ओः उषा, तुम बड़ी अच्छी हो। तुम पहले भी अच्छी थी, उसी तरह जिस तरह मैं पहले भी इतना ही अच्छा था। और उषा तुम्हें याद है ? उस दिन एल्फ्रेड पार्क के लॉन पर तुम बैठी थीं। मैं पास ही तुम्हारी केश-राशि के खुले हुए छोर में कोमल कलियों को कैद कर रहा था। सुन्दरता को सुन्दरता से बाँध रहा था। लेडी आव् दि नाइट की सुगन्धि जैसे तुम्हारे सामने अपने को हवा मे खो देना चाहती थी। यूक्लिप्टिस के

पेड़ के पीछे से चाँद ने हमे देखा था और उषा, उस समय.....।

उ०—[खोकर] अशोक.....!

अ०—क्या कहूँ उषा ! तुम क्यों थी और अब क्या होगई ? जैसे ओस को किसी ने फूल से उठाकर काग़ज़ पर बहा दिया ! इन्द्र-धनुष को काले बादल में लपेट दिया ! तितली के पखों पर कीचड़ लगा दिया !

उ०—[उद्विग्न होकर]—कुछ मत कहो अशोक !

अ०—क्यों न कहूँ उषा ? मैं तो जैसे स्वप्न देख रहा हूँ। तुम्हारी प्रभा खोई देखकर मैं ख़ुद खो गया हूँ ! मेरे पिता ने मेरे साथ बड़ा अन्याय किया जिस प्रकार तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ। उनके रूढ़िगत होरोस्कोप के जजाल ने तो हम दोनो का बलिदान कर दिया। आज तुम्हें पाकर मैं कितना निहाल होता ! इसे तुम क्या जानो उषा ? आज तुम मेरे धन पर ही नहीं मुझ पर भी शासन करतीं तो मैं कितना धन्य होता ! मै तुम्हें न पाकर कितना दुखी हूँ यह उस पेड़ से पूछो जो वसत आने से पहले ही काट दिया गया !

उ०—[मलीन होकर] और अशोक, तुम यदि मेरे हृदय को देखो तो मालूम होगा कि वह आँसुओं से बना हुआ है। मैंने कितनी ही रातें यों ही बिता दी हैं, जागते हुए ; जैसे किसी फूल को सुरक्षित रखने के लिए सन्दूक़ में बन्द कर दिया गया है। यह मेरी दशा है ! क्या इसका कोई उपाय नहीं है अशोक ?

अ०— (स्वतन्त्रता से)—है न। मेरे साथ चलो। फिर देखा जायगा ; मैंने तो तुम्हें पत्र में लिख दिया था कि आज शाम को आ

रहा हूँ और रात ही देहरादून चला जाऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो देहरादून चलकर कुछ दिनों रहो। फिर देखा जायगा। हम लोग मसूरी ही रहेंगे। वहाँ तुम्हारे माता पिता तो होंगे नहीं—[सिगरेट का धुँआ उड़ाता है।]

उ०—मैंने तो आज ही संवाददाता महोदय से कह दिया है कि मैं देहरादून जाना चाहती हूँ। मेरी माँ की तबीयत अच्छी नहीं है।

अ०—(प्रसन्न होकर)—अच्छी बात बनाई, माँ की तबियत अच्छी नहीं है! अब इसमें तो किसी तरह की रुकावट हो ही नहीं सकती। अच्छा तो उन्होंने क्या कहा?

उ०—उन्होंने कहा—मुझे कोई आपत्ति नहीं है?

अ०—बड़े उदार हैं! तुम्हारी तबीयत के ख़िलाफ़ नहीं जाते!

उ०—हाँ, हैं तो बड़े सीधे। सदैव मुझे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं। पर ज़रा रोमेण्टिक नहीं हैं। गंभीर हैं, जैसे सारे संसार की समस्या इन्हें ही सुलझानी है। और सुनो, मैंने कह दिया कि मैं अशोक के साथ जाऊँगी।

अ०—अच्छा? वे चौंके नहीं?

उ०—पहले तो कुछ चौंके। बाद में मैंने पुरानी याद दिलाई कि तुम जार्ज टाउन में रहते थे। बड़े सरल और अच्छे थे। साथ ही माँ की बीमारी का ज़िक्र किया तो स्वीकृति दे दी।

अ०—वाह बड़े सज्जन हैं! अच्छा तो फिर चल रही हो?

उ०—कब?

अ०—आज रात। मुझे अभी जाना है। दो एक चीजें सत्य-भामा के लिए लेनी हैं। उन्हें ख़रीद कर लौटूँगा। संवाद-दाताजी से भी मिल लेना ज़रूरी है। मैं करीब बीस-बाईस मिनट बाद आऊँगा। मेरे मित्र की कार है ही। कुछ देर नहीं लगेगी। तुम उनसे निश्चय कर रखना। मैं उनके सामने ही स्वीकृति ले लेना चाहता हूँ। मैं तुम्हें उनके सामने ही ले जाऊँगा। फ्राम अण्डर दि लाफुल गार्डियन-शिप। समझीं? मैं अभी लौटकर आता हूँ। फिर आज की रात हम लोगों के जीवन की मधुयामिनी होगी उषा! थैंक्स बी टु दि गाड्डेस वीनस!

उ०—पर अशोक, मुझे कुछ भय लगता है!

अ०—हॅअ्! एक ग्रेजुएट लेडी और भय? उषा, क्यों स्वयं अपने एज्यूकेशन को लज्जित करती हो? शर्मीली लड़की! [उत्साह देते हुए] उठो, चीयर अप्! मेरे साथ चलो! बुरा न लगेगा। सत्यभामा के साथ रहना।

उ०—यह सत्यभामा कौन?

अ०—मेरे संबन्धी के दूर के रिश्ते की कोई बहन। बड़ी सीधी लड़की है।

उ०—अच्छा। तो, फिर अशोक मैं तो इस जीवन से ऊब गई हूँ!

अ०—संवाद-दाताजी के पास जीवन ही क्या! स्याही, काग़ज़, क़लम और अख़बारों के ढेर। काग़ज़वालों के तक़ाज़े। एक जापानी घड़ी [क्लॉक की ओर देखकर] दो एक टूटी टेबुल्स और मैले खद्दर

का पोश। वहाँ, मेरे साथ मसूरी में देखो। खुद का बंगला जिसमें बीस तो खानसामें ही हैं। मख़मली गद्दे, जिन पर बैठो तो मालूम हो किसी की गोद मे बैठी हो। रेशमी झालरे। अधखुली खिड़की से स्नोवेट् मार्निंग सन् की सुनहली किरणे यदि सारे शरीर को चूम लें तो बुरा न लगे। कमरे मे रखे हुए मल्टीकलर्ड कोटन के इन्द्र-धनुष। शाम को ठंडी सड़क पर रॉबिन के जोड़ो का कोलाहल और उसी समय साथ साथ वाकिंग। शाम को पैलेडियम में अनेक तरह के शो और डांस। वालनट की आराम कुर्सियों पर आइस क्रीम और जिन् की उड़ती हुई मस्ती भरी महक ·······।

उ०—अशोक, निश्चय! निश्चय!!

अ०—तो फिर आज रात को चलना निश्चय रहा?

उ०—निश्चय। मोस्ट डेफिनिटली। अशोक!

अ०—तो फिर······।

बाहर दरवाज़े पर आवाज़

उ०—[शंकित होकर]—कौन? [अशोक उठ खड़ा होता है।]

[एक सत्रह वर्षीया युवती का प्रवेश। वस्त्रों में सरलता। मुद्रा में गम्भीरता। वह सौंदर्य की साक्षात् देवी है। भौहों के बीच में रोली की नन्ही सी बिन्दी। ओठों की मिलन-रेखा में जैसे मुस्कान डूब गई है। अशोक को देखकर वह कुछ विचलित हो जाती है। आकर उषा को चुपचाप नमस्ते करती है।]

उ०—[हँसकर]—ओ राजे, तुम हो? आओ, ये मेरे बालसखा श्री

अशोककुमार गुप्ता, एम० ए०, एल-एल० बी० मुंसिफ और [अशोक से] ये मेरी सखी राजेश्वरी देवी। मैट्रिक तक हमारे और आपके संवाद-दाताजी के साथ पढ़ी हैं। बड़ी सरल और मिष्ट-भाषिणी हैं। जैसे ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है। [उषा और अशोक अट्टहास करते हैं। राजे लज्जित होकर रह जाती है। वह गंभीर है।]

अ० [रसिकता से]—हूँ, ब्रह्मा ने इनके गले में एक कोयल बिठला दी है, तब तो ये सिर्फ़ वसन्त ही में बोलती होंगी ? [हास्य]

उ०—वाह, तुम तो अभी से हँसी करने लगे !

अ०—ये बोली नहीं न ? आने की ख़बर भी दी तो दरवाज़े पर आवाज़ करके। आकर नमस्ते भी की तो चुपचाप।

उ०—क्या तुम अपने जैसा बातूनी सभी को समझते हो ?

अ०—बोली तो बोलने के लिए ही है। गले में बन्द रखने के लिए नहीं।

उ०—राजे वाणी का काम आँखों से लेती है। इतनी लज्जा-शीला है।

अ०—केवल लजा के समय या अन्य समय भी ? [तिरछी दृष्टि]

रा०—[कटुता से]—उस समय विशेष रूप से जब मुझे कोई बात अच्छी नहीं मालूम देती।

अ०—[नम्रता से]—ओः मुझे क्षमा कीजिये श्रीमती राजेश्वरी देवी जी। यदि मेरी बात आपको अच्छी न लगी हो। अच्छा, उषा जाता हूँ। बीस-पच्चीस मिनट बाद आऊँगा। संवाददाताजी से मिलता जाऊँगा।

उ०—अच्छी बात है। नमस्ते।

अ०—[नमस्ते करते हुए]—श्रीमती राजेश्वरी देवी को भी सादर नमस्ते। [राजे मौन नमस्ते करती है। अशोक का प्रस्थान।]

उ०—कहो राजे, कैसे आईं? कोई विशेष बात? इधर महीनों तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। बैठो? [राजे बैठती है।]

रा०—बहिन.....[रुक जाती है।]

उ०—कहो, कहो, रुक कैसे गईं?

रा०[करुण स्वर में]—मुझ पर विशेष संकट आ पड़ा है। सहायता करोगी?

उ०—[उत्साह से]—ज़रूर। कहो क्या बात है?

रा०—मेरे पास जबलपुर से सूचना आई है कि मेरी बड़ी बहन मृत्यु-शैया...!

उ०—[अस्थिर होकर]—ऐं, मृत्यु-शैया पर.....?

रा०—हाँ, जल में डूब गई थीं। वे.....[कुछ बोल नहीं सकती।]

उ०—जल में डूब गई थीं? हाँ, अभी मैंने समाचार-पत्र में पढ़ा कि जबलपुर में दस बालिकाओं से भरी नौका सग्राम सागर में डूब गई। कहीं उन्हीं में तो तुम्हारी बहिन नहीं थीं?

रा०—[दुःखी स्वर में]—हाँ, उन्हीं में थीं। पिकनिक में गई थीं। वे वहाँ बालिकाओं की संरक्षिका थीं। छात्राओं के साथ वे भी जल में डूब गई थीं। किसी तरह निकाली गई हैं। मृत्यु-शैया पर हैं। [साश्रु नयन]

उ०--राजे, यह सुनकर मुझे बहुत दुःख है। कहो तुम्हारी सहायता कैसे कर सकती हूँ ?

रा०—मैं अपने साथ प्रमोद जी को ले जाना चाहती हूँ। मैं उन्हीं के साथ जबलपुर जाऊँगी ?

उ०—अकेली ?

रा०—हाँ, अकेली। मै उन्हें अपना भाई मानती हूँ। वे मेरे श्रद्धेय बड़े भाई हैं। सहोदर ही भाई।

उ०—[उद्भ्रांत हो अस्फुट शब्दों में] —भाई · !

रा०—[दृढ़ता से]--हाँ भाई। वे मेरे प्रमोद भाई हैं। मैं उन्हीं के साथ जाऊँगी और मेरे साथ कौन है जो जावे ? वृद्ध पितामह आ जा ही नहीं सकते। भाई बहुत छोटा है। पिता की परसाल मृत्यु ही हो गई।

उ०—[विदग्ध होकर]—भाई मानती हो ? [सम्हलकर] पर उन्हें तो फ़ुर्सत ही नहीं है।

रा०—मै जानती हूँ, पर वे बहुत उदार हैं। उन्होंने मुझपर अनेक उपकार किये हैं। ऐसे आदमी ससार में बड़ी कठिनता से मिल सकेंगे।

उ०—सचमुच ?

रा०—[प्रशंसा के स्वरों मे)—वे धनी न हों तो क्या हुआ, वे हृदय के धनी हैं। हृदय को पहचानते हैं और सच्चे मनुष्य हैं। धन और रुतबे से कोई आदमी बड़ा नहीं होता। आदमी बड़ा होता है अपने हृदय से। वे तेजस्वी हैं, उदार हैं।

उ०—[विवशता से]—मेरे लिए तो सिर्फ संवाददाता हैं।

रा०—तुम यदि उनका संवाद न समझो तो इसमें उनका क्या दोष? उनका संवाद मनुष्यत्व का सवाद है। वे दूसरे के लिए अपना सब कुछ दे सकते हैं। मेरे पास इसके अनेक प्रमाण हैं।

उ०—[जिज्ञासा की दृष्टि से]—प्रमाण?

रा०—चार वर्ष बीत गये। एक बार जब मैं साइकिल पर बाज़ार जा रही थी उस समय एक इक्केवाले की लापरवाही से मेरी साइकिल इक्के से लड़ गई और मुझे सिर में गहरी चोट लगी। उस समय प्रमोद जी वहाँ एक भिखारी को रास्ता दिखला रहे थे। उन्होंने मुझे देखते ही मेरी साइकिल के टेढ़े हैंडिल को सीधा किया और मेरे सिर की चोट को अपने रेशमी रुमाल से बाँध दिया। साइकिल तो मेरे घर पहुँचा दी और मुझे अस्पताल ले जाकर मेरे घाव की ड्रेसिङ्ग कराकर बड़ी सहायता की। मेरे सिर मे बाँधा हुआ वह उनका रुमाल आज भी मेरे पास सुरक्षित है।

उ०—[किंचित व्यंग से]—स्मृति-स्वरूप?

रा०—जो समझो। मैं उन्हें भूल नहीं सकती, वे भूलने योग्य नहीं हैं। मैं उन्हें भुला नहीं सकी।

उ०—और वे तुम्हें भूल सके?

रा०—[गहरी साँस लेकर]—वे तो मुझ से आज तक नहीं मिले। मैं कुछ महीनों पहले तुम्हारे पास आई थी, विशेषकर उन्हीं के दर्शन करने के लिये। पर उस समय वे कहीं बाहर गये हुए थे। शायद बिहार में नदियों की बाढ़ से पीड़ित किसानों की रक्षा करने के लिए। कितने उदार हैं वे। जब मुझे सिर में चोट लगी थी तभी उनके दर्शन

हुए थे। इस घटना को हुए चार वर्ष बीत गये। तब से उनसे बातें ही नहीं हुईं। काश, मुझे फिर कहीं चोट लग जाती!

उ०—[व्यंग से] हृदय में?

रा०—[उत्तेजित होकर] हँसी मत करो बहिन। वे कितने बड़े हैं यह तुम अभी तक नहीं जान सकीं। वे मेरे सहोदर भाई से भी अधिक हैं, मैं किस श्रद्धा से उनकी पूजा करती हूँ, यह तुम क्या जानो! वे कितने महान् हैं! न जाने उन्होंने कितनों पर ऐसे उपकार किये होंगे? मेरी याद उन्हें क्या होगी? इसीलिए डर रही हूँ कि वे मुझे पहचानेंगे भी या नहीं।

उ०—क्यों, तुम तो उनके साथ पढ़ी भी हो!

रा०—हाँ, यों तो मैं उनके साथ कुछ दिनों पढ़ी हूँ; पर कभी उन्होंने मुझसे पहिचान करने की कोशिश नहीं की। मैं अपना परिचय देने के लिए उनका वही रुमाल लाई हूँ जो उन्होंने मेरे सिर में बाँधा था। इसी से चाहे वे मुझे पहिचानें। देखो वह यह है। [रुमाल आगे बढ़ाती है।]

उ०—[हाथ में लेकर बड़ी सावधानी से देख कर] ओहो, बड़ी सावधानी से सुरक्षित है! यह इस कोने में लिखा है 'पी'। राजे, यदि इसे मैं फाड़ डालूँ?

रा०—[घबराकर हाथ पकड़कर] नहीं उषा, उसे मत फाड़ना। मेरे जीवन की पवित्र स्मृति फट जायगी। मैं मर जाऊँगी।

उ०—[मुस्कुराकर] घबड़ा गई? बड़ी भारी निधि है! रेशम का छोटा सा टुकड़ा!! यह लो [लापरवाही से देती है।]

रा०—[रूमाल लेकर तह करते हुए] रेशम का टुकड़ा ही सही। पर यह उनकी महत्ता और उपकार का जीवन-पर्यंत उदाहरण है। उसे तुम क्या समझो उषा ?

उ०—इसीलिए शायद अभी तक अविवाहिता हो !

रा०—[रूक्षता से] उषा, इस समय मैं तुम्हारा परिहास सुनने नहीं आई हूँ। मैं इस समय सकट में हूँ। तुम्हारी सहायता चाहने आई हूँ।

उ०—[जैसे उसकी विपत्ति का स्मरणकर] अह्, क्षमा करना राजे ! मैं बिलकुल भूल गई। मैं जानती हूँ, मेरा स्वभाव बहुत वैसा हो रहा है। इससे मुझे छुटकारा नहीं। राजे, क्षमा करना।

रा०—अच्छा बहिन, मैं कल ही जबलपुर जा रही हूँ। यदि तुम भी उनसे कहोगी तो वे अवश्य मेरे साथ चलेंगे। किसी की बीमारी या किसी की विपत्ति सुन कर वे सब कुछ कर सकते हैं। मैं तो यह विश्वास पूर्वक कह भी नहीं सकती कि उनको मेरा स्मरण होगा ! मैंने जब जब प्रयत्न किया कि उनके दर्शन करूँ तब तब वे किसी न किसी काम से बाहर चले जाते थे। उदार हो कर भी चरित्रवान ! उषा, ऐसे व्यक्ति संसार में कितने हैं ? उदार, चरित्रवान, किसी के सङ्कट में वे सब कुछ कर सकते हैं !

उ०—[सोचते हुए] हाँ, इसका प्रमाण मेरे पास भी है कि मेरी माँ की बीमारी सुन कर उन्होंने मुझे जाने की आज्ञा बड़ी आसानी से दे दी।

रा०—[चौंककर] तो क्या तुम्हारी माँ बीमार हैं ?

उ०—[कुछ उत्तर नहीं देती ।]

रा०—तो फिर बहिन, मैं उनसे चलने का अनुरोध न करूँगी । वे इस समय कहाँ हैं ? काम कर रहे हैं ?

उ०—नहीं, बाहर गये हैं, चौक ।

रा०—आज भी बाहर ! हाय, सब समय बाहर ! मेरा दुर्भाग्य ! कब तक लौट आवेंगे ?

उ०—यही घंटे, आध घंटे में ।

रा०—क्या तुम अपनी माता जी के पास जा रही हो ?

उ०—हाँ, सोच रही हूँ ।

रा०—तो फिर बहिन, वे भी तुम्हारे साथ जायेंगे । तुमने चलने के लिए उनसे कहा होगा ?

उ०—कहा तो था पर बाद में मैंने कहा कि मैं अशोक के साथ चली जाऊँगी ।

रा०—किस अशोक के साथ ?

उ०—इन्हीं अशोक के साथ जो अभी यहाँ बैठे थे । इतनी जल्दी भूल गई ?

रा०—ये अशोक ! बहिन, इसके साथ मत जाना । क्षमा करना । इनकी आँखों में जैसे पिशाच नाच रहा था । क्या तुम इन पर विश्वास कर सकती हो ? मैं तो इनकी दृष्टि से ही भयभीत हो गई थी ! एक बात भी नहीं कर सकी ।

उ०—मैं अशोक को जानती हूँ, वे हमारे बालसखा हैं। हमारे साथ के पढ़े हुए हैं।

रा०—जो हो, तुम जानो। पर मैं तो ऐसे आदमी पर कभी विश्वास नहीं कर सकती। क्षमा करना यह आलोचना। अच्छा तो मैं जाती हूँ।

उ०—उनसे तो मिलती जाओ।

रा०—नहीं, यदि मैं उनसे मिली तो वे मेरे साथ चलना अधिक उचित समझेंगे। जब मेरी बहिन मृत्युशैया पर है तब वे मेरे साथ ही जावेंगे। मेरी आवश्यकता अन्य आवश्यकताओं से बहुत बड़ी है। पर बहिन, मैं तुम्हारी माँ की बीमारी में उन्हें तुमसे दूर नहीं हटाना चाहती। उन्हें तुम अपने साथ लेती जाओ। माँ की बीमारी में वे अनेक प्रकार से सहायक होंगे। तुम उनसे मेरा नमस्ते कह देना।

उ०—ठहरो, आते ही होंगे। [बाहर से शब्द] वे आये।

[बाहर से शब्द] पोस्टमैन।

उ०—अरे पोस्टमैन है! [कुछ ज़ोर से] अन्दर आओ।

पोस्टमैन—[अन्दर आकर]—ये डाक है। [अख़बारों का बड़ा सा पुलिन्दा देता है] और ये प्रमोद बाबू के नाम एक मनी-आडर। जल्दी दसखत बनाइ दें। पोस्ट आपिस बन्द होइ वाला है। [उषा दस्तख़त कर मनीआर्डर लेती है। पोस्टमैन चला जाता है।]

रा०—मनीआर्डर है? क्या राष्ट्रवाणी का चन्दा है?

उ०—नहीं, मोतीहारी से आया है। इन्होंने बिहार के बाढ़ पीड़ितों को मृत्यु के मुख से बचाया था इसलिए वहाँ के नागरिक इन्हें मान-पत्र देना चाहते हैं, ७ अगस्त को। साथ ही ये दो सौ रुपये भेजे हैं।

रा०—अच्छा, इतना सम्मान! ओः ये कितने महान् हैं!

उ०—[सोचती रह जाती है।]

रा०—अच्छा बहिन, अब जाऊँगी। मान-पत्र तो इन्हें ७ तारीख़ को मिलेगा, आज तो १८ जुलाई ही है। [कैलेंडर की ओर देखती है।] तब तक तुम इन्हें अपने साथ ले जा सकती हो। ये तुम्हारे बड़े सहायक होंगे।

उ०—ठहरो न कुछ देर? वे आते ही होंगे।

रा०—नहीं अब मैं जाऊँगी। मैं अकेली ही चली जाऊँगी। [प्रस्थान]

[उषा थोड़ी देर तक सोचती रहती है। फिर प्रमोद की फ़ोटो के समीप जाकर मुख की ओर देखकर स्वगत कहती है।]—क्या ये इतने महान् हैं! वास्तव में इतने महान् हैं! राजे कहती है, उपकार करने पर भी विस्मरण! उदार होकर भी चरित्रवान! यदि तुम इनका संवाद न समझो तो इसमें इनका क्या दोष! इनका संवाद मनुष्यत्व का संवाद है! संवाददाता.....मेरे ..!

[प्रमोद का प्रवेश। वह थका हुआ है। रुमाल से पसीना पोंछता है।] उषा, तीन जगह भटकने पर तुम्हारी दवाइयाँ मिलीं। इसी से इतनी देर हुई। सबसे पहिले लो ये टाफ़ीज़, यह लो यह यू० डी० क्लोन और वैपेक्स।

उ० [कृतज्ञता से]—धन्यवाद ! अभी राजे आई थीं—

प्र०—कौन राजे ?

उ०—राजेश्वरी देवी ।

प्र०—कौन राजेश्वरी देवी ?

उ०—वही जिनके सिर में चोट लगी थी ।

प्र०—(आश्चर्य से)—किनके सिर में ? कब ?

उ०—चार वर्ष पहले ।

प्र०—चार वर्ष पहले ? क्या हँसी कर रही हो ?

उ०—नहीं, सच कह रही हूँ । राजेश्वरी देवी, एक नवयुवती-साइकिल पर बाज़ार जाती है--उसकी साइकिल इक्के से लड़ जाती है--उसके सिर में चोट आ जाती है—आप भिखारी को राह दिखलाने में व्यस्त हैं—आप अपने रेशमी रुमाल से उसका सिर बाँधते हैं—उसे अस्पताल ले जाते हैं–आपके साथ वह कभी पढती भी थी–राजे--राजेश्वरी देवी ।

प्र०—[स्मरण कर]—ओः वे राजेश्वरी देवी ! मुझे स्मरण ही नहीं रहा ।

उ०—इतना उपकार करने पर भी विस्मरण !

प्र०—उषा, मुझे स्मरण नहीं रहा । मैं दोषी हूँ ।

[बाहर अशोक की आवाज़]—प्रमोद ! मिस्टर प्रमोद ।

प्र०—कौन ?

[अशोक का प्रवेश । उसके हाथ में एक हैंड-बैग भी है ।]

प्र०—ओ, आओ भाई अशोक, कहो अच्छे तो हो ? [हाथ मिलाता है।] कहो कब आये ? अरे उषा, ये अशोक आए हैं, अशोक, अपने पुराने अशोक। [उषा चुप रहती है।] ओ, तुमने नमस्ते भी नहीं किया ? अरे अशोक, तुम भी उषा को देखकर चुप हो ! [उषा से] नमस्ते करो ! [उषा नमस्ते करती है। अशोक भी दोनों हाथ जोड़ कर नमस्ते करता है।]

अ०—भाई, पहले नंबर तुम्हारा है फिर उषा का। उषा जी, माफ़ करना। प्रमोद जी से ही पहले नज़र मिल गई !

प्र०—तुम बड़े शैतान हो, तुम्हारी पुरानी आदतें अभी गई नहीं। अच्छा, यह बतलाओ, आए कब ?

अ०—अरे भाई, अभी आया 'जस्ट नाऊ'। अब पूछो कि कब जा रहा हूँ। व्हेन।

प्र०—इतनी जल्दी कैसे जा सकते हो ? इस बैग मे क्या है ?

अ०—कुछ नहीं भाई, अपनी बहन सत्यभामा के लिये कुछ चीज़ें खरीदनी थीं। लगे हाथों मैंने सोचा, लाओ उषा के लिए भी एक हीरे की अँगूठी खरीद लूँ।

उ०—[गंभीरता से] मुझे कोई अँगूठी नहीं चाहिए।

अ०—यह कैसे मान लूँ ? आप लोग तो 'हाँ' को पहले 'न' ही कहती हैं। यह तो मेरा आर्ट है कि मैं आपको दूँ।

उ०—मिस्टर अशोक, मैं ठीक कह रही हूँ। अँगूठी मुझे नहीं चाहिए। थैंक्स।

अ०—[लापरवाही से] मेरी प्रेजेंट आज तक किसी ने नहीं लौटाई। अँगूठी लेनी ही होगी।

[बैग में से अँगूठी निकालता है।] और यह मत समझना प्रमोद कि तुम्हारे लिए कुछ नहीं लाया। लाया हूँ—चार दस्ते सफेद काग़ज़ [काग़ज़ निकालते हुए] अग्रलेख लिखने के लिये। दो बढ़िया होल्डर, न्यूज़ पेपर काटने की एक कैंची और·····[सब चीज़ें टेबिल पर रखता है।]

प्र०—[हँसकर]—अशोक, तुम्हारी हँसी अब तक नहीं गई। अरे, अब मुंसिफ साहब हो गये हो, मैंने सुना। काग्रेचुलेशंस।

अ०—थैंक्स, सवाददाताजी! मुसिफी और मेरी हँसी से क्या रिश्ता? जो मुंसिफी मेरा रोमांस ले बैठे उस मुसिफी से मेरा गुडबाई!

प्र०—अच्छा तो यह हीरे की अँगूठी क्या होगी?

अ०—तुम्हें कहाँ दे रहा हूँ? दे रहा हूँ अपनी बहन उषा को सत्यभामा की तरह।

प्र०—अशोक, इसकी ज़रूरत नहीं। मैं गरीब हूँ, मुंसिफ नहीं। यह हीरे की अँगूठी हम लोगों से नहीं सँभलेगी। मै इस अँगूठी का उत्तर तुम्हें किसी तरह भी नहीं दे सकूँगा।

अ०—क्या इस अँगूठी के लिए मै तुमसे कोई 'रिटर्न' चाहता हूँ?

प्र०—अशोक, मैं ग़रीब हूँ पर अपनी मर्यादा के साथ हूँ। तुम न सोचो, मैं तो सोचूँगा। [उषा मौन होकर प्रमोद को एकटक देखती रह जाती है।]

अ०—डैम इट्। यह फिलासफी ले बैठे। ख़ैर, उषा से समझ लूँगा। मुझे जल्दी जाना है।

प्र०—अच्छा, तो फिर इतनी जल्दी जा क्यों रहे हो? अभी ठहरो, दो एक दिन मेरे पास।

अ०—थैंक्स, मेरे पास समय नहीं है। प्रमोद, मुझे जल्द ही चार्ज लेना है। और फिर एक बात है। उषा की माँ की तबीयत खराब है। [उषा से] उषा, तुम्हारी माँ की तबीयत ख़राब है। तुम्हारी माँ की तबीयत ज़्यादा ख़राब है। [उषा चुप रहती है।] तुम्हें मालूम हुआ? मेरे साथ तुम्हें देहरादून चलना है। [प्रमोद से] क्यों प्रमोद, तुम्हें भी तो ख़बर मिली होगी कि उषा की माँ की तबीयत ख़राब है।

प्र०—हाँ, उषा ही ने कहा था।

अ०—तो उषा भी जाना चाहती है, तुम्हे कोई आपत्ति तो नहीं है?

प्र०—मुझे कोई आपत्ति नही है। उषा की माँ की तबीयत ख़राब हो और उषा के भेजने में आपत्ति! कैसी बातें करते हो? फिर तुम्हारे साथ? मेरे परिचित, मित्र, सहपाठी! कब जा रहे हो?

अ०—आज, अभी शाम की गाड़ी से।

प्र०—अभी तो उनकी कोई तैयारी नहीं।

अ०—भई वाह, माँ को देखने जाने में किस तैयारी की ज़रूरत?

प्र०—तो भी कुछ कपड़े-वपड़े—

अ०—तो फिर बस इतना ही वक्त है।

प्र०—चा तो पीते जाओ।

अ०—फ़ारमैलिटी में मत पड़ो। ट्रेन टाइम है सिक्स थरटीन, मुझे वहाँ पौने छः बजे पहुँच जाना चाहिए। स्टेशन यहाँ से काफी दूर है। उषा से तैयार होने को कह दो। और यह लो अपने चार दस्ते कागज़। ज़रा लोग समझें तो कि हम लोग कितने फ्रेंडली हैं। फिर यह प्रेज़ेंट।

प्र०—बिना प्रेज़ेंट के ही लोग हम लोगों को फ्रेंडली समझते हैं। पर तुम्हारी प्रेज़ेंट मैं लूँगा। इसकी क़ीमत मेरी नज़रों में स्वर्ण-पत्र के बराबर है।

[अशोक मुस्कुराता है, उषा गंभीर होकर प्रमोद को देखती है। अच्छा उषा, तैयार हो जाओ। अशोक के साथ जाओ। अच्छी तरह से रहना। अपने माता पिता से मेरा प्रणाम कहना। शीघ्र ही आने की कोशिश करूँगा.....

अ०—[बीच ही में] मैं तो वहाँ हूँ। तुम्हारे कष्ट करने की ज़रूरत क्या है प्रमोद? मेरे रहते किसी तरह की तकलीफ हो? कैसी बातें करते हो, तुम हुए या मैं हुआ? इट् इज़ आल दि सेम।

प्र०—पर तुम तो चार दिन बाद चले जाओगे अपनी मुंसिफी पर।

अ०—मैं सब इतज़ाम कर जाऊँगा; डॉक्टर्स, नर्सेस, कंपाउण्डर्स, सब को मैं उँगलियों पर नचाता हूँ। वह तो मुझे वायर मिला कि उषा की माँ की तबीयत ख़राब है। यही वजह है कि मैं देहरादून जा

रहा हूँ। फादर से मिलना तो महज़ फारमैलिटी की बात है।

प्र०—तो उषा, तुम जाने के लिए तैयार हो जाओ। मैं भी मुँह धो लूँ। धूल में भर रहा हूँ। [प्रस्थान]

अ०—तो उषा तुम तैयार हो जाओ। [उषा चुप रहती है।]

हम लोगों के पास समय नहीं है। तुम तैयार हो जाओ उषा चलने के लिये—

उ०—अशोक तुम बड़े नीच हो।

अ०—ये झिड़कियाँ! अभी से? नीच हूँ, ऐसा हूँ, वैसा हूँ,। अच्छा! मज़ाक़ रहने दो आलदो तुम्हारे मुँह से यह भी सुनना अच्छा लगता है। ओह्, उषा जब ग़ुस्से में भी तुम इतनी अच्छी लगती हो तो फिर ख़ुश होने पर तो हैवेन अनवील्ड! हैवान नहीं।

उ०—[तीव्रता से] अशोक—

अ०—उषा, अब किसी डुएट के लिए हम लोगों के पास वक़्त नहीं है। अब तो हम लोगों को अपनी जरनी का प्रोग्राम बनाना चाहिए। अच्छा यह बतलाओ, सीधे देहरादून ही चलोगी कि बीच में कहीं ठहरना........

उ०—बको मत अशोक!

अ०—अरे, यह क्या कह रही हैं जनाब! आपके रुख़ तो बड़े बढ़े-चढ़े हैं। आसानी से सम्हलने के नहीं। ज़रा बदल के कहूँ—हाउ हाइ हर हाइनेस होल्ड्स हर हाटी हैड!

उ०—शट् अप्।

अ०—जनाब ने कोई नशा तो नहीं किया ? आख़िर आपके ये हैं क्या रंग ? क्या चलने का इरादा नहीं है ?

उ०—[दृढ़ता से] नहीं।

अ०—[आश्चर्य से] नहीं ?

उ०—नहीं, तुम अकेले जा सकते हो। मैं न जा सकूँगी।

अ०—अरे, तुम्हें हो क्या गया ? माँ की तबीयत ख़राब है और तुम नहीं जाओगी ! ख़ूब रहा।

उ०—मैं जानती हूँ, माँ की तबीयत ख़राब नहीं है। मैं नहीं जाऊँगी।

अ० [उसी स्वर में]—अभी तो तुमने कहा कि माँ की तबीयत ठीक नहीं है।

[प्रमोद का प्रवेश।]

उ०—मेरी माँ की तबीयत अब ठीक है। मैं नहीं जाऊँगी।

अ०—उषा, पागल हो गई हो क्या ? संवाददाताजी, अपनी 'राष्ट्रवाणी' में प्रकाशित करा दीजिए—उषा पागल हो गई।

उ० [क्रोध से]—आप उन्हें संवाददाता कहकर मज़ाक न उड़ाइए। आप उन्हें क्या समझें, वे क्या हैं।

[प्रमोद आश्चर्य-चकित है।]

अ०—'रा ष्ट्र वा णी' के सं वा द दा ता—[प्रत्येक अक्षर पर ज़ोर देता हुआ।]

उ०—चुप रहो अशोक। तुम अकेले जा सकते हो।

अ०—तो क्या मैं अकेला ही जाऊँ ? तुम्हारी हीरे की अँगूठी–

उ०—उसे अपने ही पास रक्खो। कभी काम देगी।

अ०—तो मैं अकेले.....।

उ०—बिलकुल अकेले जाओ, अशोक। अब मै तुमसे बात नहीं करना चाहती। [भीतर चली जाती है।]

प्र०—[आश्चर्य से]—मैं नहीं समझ रहा हूँ कि यह क्या बात है !

अ०—जाने दो प्रमोद। आजकल की स्त्रियों पर क्या एतबार। कभी मैनचेस्टर का सिल्क पहनती हैं, कभी प्रोसेशन में जाकर महात्मा गाँधी की जय बोलती हैं। इन्हें हवा का रुख़ समझ लो। चाहे जिधर बह जाँय। फीमेल माइण्ड इज ए मिस्ट्री मिस्टर। अच्छा तो फिर मैं जाता हूँ, ज़रा जल्दी में हूँ। अभी जाकर उषा को तुम छेड़ना मत। नशे में होगी ,न जाने क्या-क्या कह दे।

प्र०—क्या उषा देहरादून नहीं जा रही हैं ?

अ०—नहीं ?

प्र०—क्यों ?

अ०—पता नहीं। अभी एक मिनट में ठीक बातें कर रही थी—अभी जाने क्या हो गया ?

प्र०—क्या हो गया !

अ०—गाड नोज़ ! सारी तहज़ीब भूल गई।

प्र०—सचमुच उषा का यह व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगा।

मैं पूँछूँ क्यों नहीं जा रही है ?

अ०—जाने भी दो भाई, तुमसे भी वाही-तवाही बकने लगेगी। इन एज्युकेटेड गर्ल्स में यही बात तो ख़ास है कि जो मुँह में आया दे मारा सर से। उनसे पूछना क्या है ? तबीयत बदल गई। जनाब, अब नहीं जायेंगे। करे, कोई क्या करता है !

प्र०—अच्छा ! ख़ैर, जब वह नहीं जा रही है तो तुम मेरा प्रणाम उषा के माता पिता से कह देना और माताजी के बारे में शीघ्र ही लिखना।

अ०—ज़रूर, माँ की तबीयत ख़राब ज़रूर है। उषा ने ख़ुद मुझसे कहा था। अब बिलकुल उलटी बात कहती है।

प्र०—अशोक, मुझे मालूम होना चाहिये कि दरअसल वे क्यों नहीं जा रही हैं।

अ०—पूछ कर क्या करोगे ? तुमसे भी वह ऐसी ही बातें करेंगी। जनाब, इन लोगों के आगे लियाक़त खत्म हो जाती है। पता नहीं किस वक्त क्या सोच जाँय। बात करते करते इनडिफरेंट हो जाना तो इन लोगों का वर्थ राइट है।

प्र०—[किंचित हास्य।]

अ०—हाँ, भाई, अभी कहा कि माँ बीमार हैं, फिर कहा कि अच्छी हैं। अभी कहा कि देहरादून जाऊँगी फिर कहा नहीं जाऊँगी।

प्र०—[अव्यवस्थित होकर] हाँ, मुझसे भी जब वे देहरादून जाने की बात कर रही थीं तो उन्होंने अपनी माताजी के बीमार होने के विषय में कहा था।

अ०—ख़ैर जाने दो, जब उनका दिमाग़ कुछ शान्त हो जाय तब पूछना। अभी तो आराम करने दो। अच्छा भाई, तो मैं अब जाता हूँ।

प्र०—तो फिर चले ही जाओगे ?

अ०—हाँ, जाना ज़रूरी है।

प्र०—अच्छा, तो ख़बर लेने के लिए मैं शीघ्र ही आऊँगा।

अ०—ज़रूर आना। हाँ, और देखो, तुम यह मत सोचना कि अशोक अभी आया और अभी चला गया। भाई, मैं तुम्हारा वही पुराना सिनसीयर दोस्त हूँ। कोई चाहे कितना ही कहे, उसकी बात पर ध्यान देना मामूली आदमियों का काम है, तुम्हारा नहीं।

प्र०—[लज्जित सा होकर] अच्छा ! यह कहोगे ?

अ०—तुम सिर्फ संवाददाता हो तो क्या हुआ तुम में दुनिया को समझने की ताक़त है। दुनिया भर के अख़बारों को देखते हो। न जाने कितनी बातें पढते होंगे। लेकिन तह तक पहुँचने की ताक़त उसीकी हो सकती है जिसने तुम्हारी तरह इतना पढा है। मैं तो मज़ाक में तुमसे न जाने क्या क्या कह देता हूँ लेकिन दर असल पूछा जाय तो मैं तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता, मुसिफ हो गया तो क्या ?

प्र०—आज तो बड़ी बातें झाड़ रहे हो !

अ०—नहीं पते की बातें कहता हूँ भाई। मुझे इस बात का प्राइड है कि मुझे तुम्हारा जैसा दोस्त मिला। यहाँ से मैं निकल जाऊँ और मजाल कि तुम्हारे पास न ठहरूँ ?

प्र०—भाई, यह तुम्हारी कृपा है !

अ०—क्रिपा मैं ठीक कह नहीं सकता ! ऐसी कठिन जबान बोलते हो भाई ! अच्छा तो फिर लिखना ।

प्र०—लिखना कैसा, मैं खुद आऊँगा यह देखने के लिए कि उषा की माँ की तबीयत क्या सचमुच खराब है !

अ०—हाँ, आने की तारीख लिखोगे तो स्टेशन पर आ जाऊँगा । अच्छा भाई चला । गुडबाई ।

[प्रस्थान]

प्र०—[हाथ उठा देता है । सोचते हुए लौट कर] उषा में यह कैसी अशिष्टता ! [पुकार कर] उषा !

[उषा का प्रवेश साधारण वस्त्रों में]

उ०—कहिए ।

प्र०—[उषा को इस वेश में आश्चर्य से] अरे उषा, यह क्या ! ऐं, तुम्हें यह हो क्या गया है ?

उ०—[सरलता से] कुछ नहीं । यह साधारण साड़ी मुझे अब बड़ी अच्छी लगने लगी है ।

प्र०—क्या तुमने कोई नशा किया है ?

उ०—नहीं, अब नशा उतर गया है ।

प्र०—मैं तो कुछ समझा नहीं ! आज का तुम्हारा यह व्यवहार अच्छा नहीं रहा अशोक के साथ !

उ०—मैंने उचित ही व्यवहार किया । यदि भूल हुई हो तो क्षमा चाहती हूँ । [हाथ जोड़ती है ।]

प्र०—उषा, क्षमा चाहती हो ? मुझसे ? मैंने तो आज तक यह शब्द तुमसे सुना ही नहीं। व्यग्य मत करो।

उ०—ओह, मैं तुम पर व्यंग करूँगी ? तुम कितने महान् हो, मैं अभी तक यह नहीं समझ सकी। मैंने माँ के विषय में जो झूठ बात कही थी उसकी भी क्षमा दो। तुम उदार हो, चरित्रवान हो, मैं तुम्हें पाकर··· ·····।

प्र०—[हँसते हुए] कितनी दुखी हो ! अच्छा उषा, दुखी ही रहो पर ये अपनी दवाइयाँ तो लो। [दवा की तरफ़ इशारा करता है।]

उ०—[दवाओं को फेंककर] अब मुझे इनकी आवश्यकता नहीं।

प्र०—[आश्चर्य से] मैं समझ नहीं रहा हूँ उषा, यह तुम क्या कह रही हो ? यह शीघ्र परिवर्तन !

उ०—शीघ्र ! कहिए कितनी देर में परिवर्तन ! [स्मरण कर] आह, राजे, तुमने मेरी आँखे··· ··।

प्र०—राजे ? यह क्या कह रही हो ?

उ०—कुछ नहीं, मेरी एक प्रार्थना मानोगे ?

प्र०—[प्रसन्नता से] कैसी प्रार्थना ?

उ०—केवल एक प्रार्थना ?

प्र०—कौन-सी ?

उ०—राजेश्वरी देवी के साथ उनकी वहिन की रक्षा करने के लिये जवलपुर चलो।

प्र०—कैसी वहिन ?

उ०--उनकी बहिन कुमुद पानी में डूब गई थीं। किसी तरह से वे बचाई जा सकी हैं। इस समय उनकी परिचर्या की आवश्यकता है। वे मृत्यु-शैया पर हैं। यह देखो समाचार। [समाचार पत्र देती है।] यह पढ़ा कि नहीं ?

प्र०—[समाचार पढ़कर चिंता से] आह, इनमें तुम्हारी सखी की बहिन है ? तब तो मैं ज़रूर जाऊँगा, भीख माँग कर भी जाऊँगा। तुम भी चल सको तो चलो। आह! बेचारी कुमुद !

उ०—भीख न माँगनी पड़ेगी। मैं गृहलक्ष्मी जो हूँ।

प्र०—गृहलक्ष्मी !

उ०—हाँ, गृह की लक्ष्मी ! जादू के ज़ोर से जितने रुपये कहो अभी निकाल सकती हूँ। दस, बीस, पचास, सौ, दो सौ।

प्र०—बस ?

उ०—और मान-पत्र भी दे सकती हूँ।

प्र०—कैसा मान-पत्र ?

उ०—अच्छा, हँसी का समय नहीं है। मोतिहारी के नागरिक आप को मान-पत्र देना चाहते हैं। आपने बिहार के पीड़ित किसानों की रक्षा की थी न ? साथ में दो सौ रुपये भी भेजे हैं। यह देखिए कूपन। [कूपन देती है।]

प्र०—[कूपन देखते हुए] ख़ैर, मान-पत्र की आवश्यकता तो मुझे है नहीं। ये दो सौ रुपये जबलपुर जाने में

अवश्य सहायक होंगे। इस समय तो राजे की बहन.....अच्छा तो मैं जाऊँ?

उ०—हाँ, राजे के पास जाओ। उसे सूचित कर दो कि हम दोनों भी साथ चल रहे हैं। शीघ्र जाओ, नहीं तो शायद वह अकेली ही चल दे। उसके मकान का नम्बर है ११, वैलिंगडन रोड। तब तक कहो तो मैं तुम्हारा संवाद पूरा कर दूँ—

प्र०—मेरा संवाद तुम पूरा करोगी उषा! उसका प्रबन्ध मैं कर लूँगा। कष्ट मत करो। अच्छा तो मैं जाता हूँ। [शीघ्रता से जाता है।]

[उषा संवाद को पूरा करने के लिए टेबुल पर बैठ जाती है और ज़ोर से पढ़ती है—

आहत स्त्री पुरुषों का लोमहर्षक चीत्कार!!

बिहटा। १८ जुलाई—अभी तक की ट्रेन-दुर्घटनाओं में सब से भयानक वह है जो पटना के समीप बिहटा नामक स्थान में १७ वीं तारीख़ की रात्रि को घटी। पंजाब हावड़ा एक्सप्रेस जो पचास मील के वेग से जा रही थी, अचानक बिहटा के समीप उलट गई। तीन सौ यात्री घायल हुए। सौ की तो मृत्यु ही हो गई। ऐ जिन रास्ते से टेढा होकर नीचे गिर पडा जैसे कोई दैत्य ढोकर खाकर बैठ गया हो। चार-पाँच डिब्बे चूर-चूर हो गये। चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। कोई-कोई यात्री तो अंग-विहीन हो गये। एक व्यक्ति के दोनों हाथ कट गए। उसकी नव-विवाहिता पत्नी को भी चोट लगी। किन्तु वह

साधारण है। पर उसे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है·····!

उ०—[ऊपर दृष्टि कर करुणाव्यंजक शब्दों में कहती है—] और मुझे जो मानसिक चोट लगी है वह उसकी शारीरिक चोट से कितनी भयानक है !!!

पटाक्षेप